

## नई सदी में आदिवासी साहित्य एवं अस्मिता का यर्थाथ

डॉ० प्रीति सिंह

पी०डी०एफ०, लखनऊ विश्वविद्यालय, उत्तर प्रदेश, भारत

### प्रस्तावना

आदिवासी समाज वह समाज है, जो आज भी अपने अस्तित्व एवं अस्मिता के लिए संघर्षरत है। भारत एक ऐसा विशाल राष्ट्र है, जिसमें आदिवासी अधिक संख्या में निवास करते हैं। सम्पूर्ण भारत का लगभग सात प्रतिशत आबादी आदिवासी समाज का है। भारत जैसे विशाल राष्ट्र में भाषा, धर्म, जाति तथा वेषभूषाओं की भिन्नताओं की तरह आदिवासियों में भी भिन्नताएँ पायी जाती हैं। ये समस्त आदिवासी भारत के मूल निवासी हैं। इन्हें हम जनजाति, आदिमजाति, गिरिजन, तथा अनुसूचित जनजाति के नाम से जानते हैं। इन आदिवासियों के अलग-अलग नाम, उनके अनेक उपजातियाँ, उनकी संस्कृति, खान-पान, रहन-सहन, भाषा पूरी तरह से एक दूसरे से भिन्न होते हुए भी इनकी समस्याएँ, इनका जीवन, जीवन साधन और सामान्य तरीके लगभग एक से हैं।

आदिवासियों को परिभाषित करते हुए श्यामाचरण दुबे लिखते हैं:- "जनजातियों की जड़े इस देश में बहुत गहरी और पुरानी हैं। उनका परिवेश अगम्य भले ही रहा हो, किन्तु उसकी दूरी ने सांस्कृतिक प्रभावों पर स्वाभाविक नियंत्रण रखा है। जनजातियों का समाज बोध सीमित और उथला है। अपनी सांस्कृतिक समग्रता, भाषाओं, संस्थाओं, विश्वासों और प्रथाओं के आधार पर समाज के शेष भागों में वे अलग दिखाई पड़ते हैं। जनजातियाँ समतावादी भले ही न हों किन्तु उनमें आंतरिक स्तरण और विशेषीकरण बहुत कम होता है।"<sup>1</sup>

यह एक दुखद बात है कि इस धरा का मूल निवासी आदिवासी होने के बावजूद तथाकथित सभ्य समाज की बर्बरता से यह समुदाय जंगलों, कंदराओं की ओट में रहने के लिए विवश रहा। प्रकृति से साहचर्य स्थापित कर यह समुदाय जल, जंगल और जमीन के किसी कोने दुबका रहा। विकास और सुविधा संसाधन से वंचित रहा। परन्तु लगातार विस्थापित होने के बावजूद इस समुदाय ने अपनी संस्कृति सभ्यता, भाषा को कभी त्यागा नहीं। लाभ-लोभ की प्रवृत्ति से दूर रहकर आदिवासी समुदाय ने सदियों से जंगलों में कंदमूल खाकर, पोखरों, झरनों का पानी पीकर जीवन-यापन किया—पूरे आत्माभिमान सहित अपनी भाषा, सहित और जीवन शैली को जिन्दा रखते हुए जीवन यापन किया।

लगातार शोषण और विस्थापन के शिकार रहने के कारण ही इस समुदाय में आक्रोश का भाव तीव्र होता रहा। जैसे-जैसे आदिवासी वर्ग शिक्षा और नागरी परिवेश से परिचित हुआ, उसे अपने मूल्य और वजूद का एहसास सालने लगा। आदिवासी अपने को छला हुआ, विकास की मुख्यधारा से वंचित और समाज का बहिष्कृत हिस्सा समझने लगा। उसमें अपने शोषण का बोध जैसे-जैसे बढ़ता गया, वैसे-वैसे उसने सभ्य जातियों के अत्याचार के विरुद्ध बगावत का रास्ता अख्तियार किया।

इसी अत्याचार के विरुद्ध आदिवासियों में उभरती हुई चेतना के विषय में 'रमणिका गुप्ता' लिखती हैं— "देखो! हम एक ऐसे समाज हैं, जिनके मूल्यों का न तो ह्रास हुआ है, न ही उनमें विकृति आई है। हम सामूहिक जीवन प्रणाली में जीते रहे हैं। समाज और समूह में रहते हैं। तुम्हारे द्वारा दी गयी कठिन जिन्दगी को अपने गीतों,

अपने नृत्य से भुलाते रहे हैं तुमने हमें सभ्यता से दूर ठेला/ विस्थापित किया/ हमने बांसुरी और नगाड़े के माध्यम से आपसी संवाद जारी रखा/ अब यह संवाद नाद बनकर फूट पड़ा है/ बांसुरी को हमने "मशाल" बना लिया है/ अब देश और भाषाओं की सीमाएँ और कबीलों के दायरे लांघकर हम अपने समूचे समाज को रोशन करने के लिए संकल्पबद्ध हो गये हैं हमारी भाषाओं ने अब कलम थाम ली है। हम लिखने लगे हैं कि अब हमने अपनी अस्मिता पहचान ली है।"<sup>2</sup>

आदिवासी साहित्य में विद्यमान वेदना, पीड़ा, आक्रोश का भाव इसका प्रतीक है। गौरतलब है कि अपनी उपेक्षा और अन्याय के विरोध में आदिवासी समुदाय प्रतिरोध करता रहा है। देश के अनेक हिस्सों में आदिवासी विद्रोह की लम्बी परम्पराएँ रही हैं। मिशन विद्रोह जैसे आन्दोलन से आदिवासी समाज की तड़प बेचैनी और संघर्ष का अंदाजा लगाया जा सकता है।

'तीर और कमान आदिवासी की पहचान रहे हैं। आज यह 'कलम की शक्ति' के रूप में उद्घाटित हो रही है। जैसे-जैसे जागरूकता और चेतना बढ़ रही है, ज्ञान की रोशनी से जंगलवासी परिचित हो रहे हैं, वैसे-वैसे उनमें अपने स्तव्य बोध और अस्मिता का भान दृढ़ होता जा रहा है। जीवन के बुनियादी हकों के लिए वे संगठित हो रहे हैं।

कलम की ताकत उनके संगठन में महत्वपूर्ण भूमिका अदाकर रही है। आज आदिवासी लेखन अपनी सामाजिक, सांस्कृतिक विशिष्टताओं का उद्घाटन कर उस समूची व्यवस्था को प्रश्नांकित कर रहा है, जिस पर सभ्य कही जाने वाली सभ्यता गुमान करती रही है। यह भी कि, यह विमर्श समूची सांस्कृतिक परम्परा के पुनर्पाठ की आवश्यकता भी जता रहा है।

आदिवासी लेखन में कुछ ऐसे साहित्यकार आ रहे हैं, जिन्होंने अपने लेखन का मुख्य उद्देश्य आदिवासी जीवन, उनकी समस्याएँ, उनके संघर्ष, चुनौतियाँ एवं क्या सुधार और सम्भावनाएँ हो सकती हैं, इसी को लिया है, इन लेखकों में रामदयाल मुण्डा, हरिराम मीणा, गंगा सहाय मीणा, रमणिका गुप्ता, निर्मला पुतुल, वन्दाना टेटे, अनुज लुगुन, प्रमोद मीणा, रोज केरकेट्टा, बन्नाराम मीणा आदि प्रमुख हैं। जिन्होंने आदिवासी जीवन को समाज के सामने एक विमर्श के रूप में प्रस्तुत किया। अन्य विमर्शों की तरह आदिवासी समस्याओं की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित किया। आदिवासियों की संस्कृति, परम्परा, भाषा, लोक कथाओं को समाज के सामने उजागर किया। ये आदिवासियों के लिए एक महत्वपूर्ण कदम साबित हुआ है। वर्तमान में जो आदिवासी नहीं हैं, वो भी इस विमर्श को पढ़ना, लिखना और समझना चाहता है।

हरिराम मीणा आदिवासी जीवन एवं उनके अस्तित्व पर आये संकट के विषय में लिखते हैं— 'आदिवासियों की मूल समस्या अंततः अस्तित्व के संकट की बन चुकी है। आदिवासियों को तो यह भी पता नहीं कि उन पर यह अस्तित्व का संकट क्यों है? वे भौंचक्का हैं, किन्तु मौन! इसीलिए आदिवासी साहित्य के तेवर अलग होंगे।'<sup>3</sup> अस्तित्व के संकट की चरम सीमा अण्डमान में जो हरिराम मीणा ने देखी, उसे कविता के रूप में इस प्रकार व्यक्त किया है—

जिन्होंने हमें गोलियों से भूना  
वे इंसान थे  
जिन्होंने हमें टापुओं से इधर-उधर खदेड़ा  
वे इंसान हैं  
और जो हमारी नस्ल को उजाड़ेंगे  
वो इंसान होंगे<sup>4</sup>

आज का आदिवासी विमर्श अस्तित्व और अस्मिता का विमर्श है। यह ऐसा विमर्श है, जिससे इस समुदाय की परम्परा रूढ़ियाँ, संस्कृति, अन्याय, अत्याचार, अपमान, शोषण सभी कुछ बयान हो रहा है, लोककला, संगीत, नृत्य, संस्कृति, भाषा, बोली, लिपि आदि विभिन्न धरातलों पर आदिवासी लेखन एक व्यापक विमर्श का हिस्सा बन रहा है।

यह एक प्रश्न के तौर पर चर्चा का विषय रहा है कि आदिवासी साहित्य क्या है? कारण यह है कि इस साहित्य के बहाने जो तथ्य सामने आ रहे हैं उसमें सभ्य समाज की बर्बरता, अमानुषिकता का उल्लेख मात्र नहीं है, अपितु मानव सभ्यता के इतिहास की जमीनी हकीकत को मटियामेट करने की कहानी भी अभिव्यक्त हो रही है। रमणिका गुप्ता की पुस्तक— 'आदिवासी अस्मिता का संकट' में बस्तर के आदिवासी के विषय में कवि लक्ष्मण कांवड़े लिखते हैं—

'बस्तर के वनवासी भी देखते हैं सपने'  
कि आयेगा वक्त एक न एक दिन जरूर  
जब इनके कमर में फटा चिथड़ा लंगोट,  
फैल जायेगा पूरे शरीर पर  
तब अतीत के गर्भ में दब जायेगा।  
उनका अर्ध-नग्न अस्तित्व<sup>5</sup>

वर्तमान में स्त्री और दलित विमर्श की ही तरह आदिवासी विमर्श भी अपने समस्त सरोकारों के साथ उपस्थित हुआ है। जिन्होंने भी अपने साहित्य गढ़ लिया है, अपनी भाषा को लिपिबद्ध कर लिया है। अपने लेखकीय प्रतिमान को स्थापित कर लिया है। अपनी रंग-भाषा, अपने प्रतिरोध और संघर्ष के तेवर तथा अपने साहित्यिक सौन्दर्यशास्त्र को भी एक रूप दे दिया है।

आज आदिवासी साहित्य लगभग सभी विधाओं में लिखा जा रहा है, जिसमें उपन्यास, कहानी, कविता, लोककथाएँ आदि प्रमुख हैं। कुछ आदिवासी उपन्यास ऐसे हैं, जिसे पढ़कर लगता है कि हम आदिवासी दुनिया में ही हैं। उनकी समस्याओं, संघर्षों और जीवन को पढ़कर महसूस होता है कि समाज अभी कहां आगे बढ़ रहा है। इन उपन्यासों में सजीव का 'जंगल जहाँ शुरू होता है', 'पांव तले की दूब', रणेन्द्र का 'ग्लोबल गांव का देवता' महाश्वेतादेवी 'चोटिट मुण्डा और उसका तीर, महुआ माजी, 'मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ', राकेश कुमार सिंह, हुल पहाड़िया, 'उलगुलान बिरसा मुण्डा और उसका आन्दोलन, आदि प्रमुख हैं।'

इन उपन्यासों में आदिवासी जीवन के विभिन्न पहलुओं को दिखाया गया है। रमणिका गुप्ता आदिवासी साहित्य के विषय में लिखती हैं—'आदिवासी साहित्य जीवन का साहित्य है'।

वह प्रकृति का सहयोगी—सह अस्तित्व का अभ्यस्त, उँच—नीच, भेद—भाव व छल—कपट से दूर है। वह जमाखोरी या संपत्ति जुटाने की भावना से मुक्त है। वह अन्याय का विरोधी और सामाजिक न्याय का पक्षधर है। उसके साहित्य में इन्हीं सब की अभिव्यक्ति है। जीवन के समस्याएँ और प्रकृति से लगाव उसके साहित्य का आधार है।<sup>6</sup>

आदिवासी साहित्य मूलतः जीवन—संघर्ष, जिजीविषा एवं अस्तित्व रक्षण का साहित्य है। यह केवल शब्दबद्ध रचना नहीं है बल्कि

मुद्दों पर आधारित शोषित, उपेक्षित बहिष्कृत वर्ग की आवाज उठाने वाला प्रतिबद्ध, परिवर्तनकारी, एवं शब्दबद्ध साहित्य है। आदिवासियों की मूल समस्या 'विस्थापन' की रही है। वे घने जंगलों में रहते हैं। जहाँ कोयले की खदाने, बाक्साइड खनिज संपत्ति भरपूर मात्रा में उपलब्ध है। परन्तु इन खदानों पर बड़े उद्योगपतियों का अधिकार है। अतएव उन्हें इन खदानों के आसपास से विस्थापित किया जा रहा है। विभिन्न जल परियोजनाओं के अन्तर्गत नदी पर बांध बनाये जा रहे हैं जिसके लिए उन्हें अपनी जमीन से बेदखल किया जा रहा है। रमणिका गुप्ता इसी समस्या के विषय में लिखती हैं—

'आदिवासी, बन अधिकारियों की वारदातों के खिलाफ थे, इनके तथा इनकी मा-बहनों के प्रति वन कर्मचारियों द्वारा दुराचार की अनगिनत वारदातों को अंजाम दिया गया। बेईमान, ठेकेदारों और भ्रष्टाचारी वन अधिकारियों की मिलीभगत से वन के वन उजाड़े जाने लगे तो आदिवासियों में गहरा शोक पैदा हो गया कि गैर आदिवासी लोगों द्वारा अपनी संपत्ति लूटी जा रही है।'<sup>7</sup>  
जंगल आदिवासी जीवन का मुख्य आधार रहे हैं। उनका काटना आदिवासी समाज की संस्कृति एवं उनकी जातीय अस्मिता को काटना है। इसी के कारण उन्हें अपने स्थान से पलायन करने पर मजबूर होना पड़ रहा है।

वेरियर एलविन आदिवासियों के विषय में लिखती हैं— 'अब उन्हें उत्पीड़न और शोषण से गुजरना पड़ रहा था, क्यों कि जल्दी ही व्यापारी और दारु के ठेकेदार वहां आ गये और जब तक उनकी सादगी और अज्ञानता का फायदा उठाते रहे, उन्हें उकसाते और ठगते रहे, जब तक थोड़ा-थोड़ा उठाते रहे, उन्हें उकसाते और ठगते रहे, जब तक थोड़ा-थोड़ा उठाते रहे, उन्हें उकसाते और ठगते रहे, जब तक थोड़ा-थोड़ा करके उनके विशाल खेत सिकुड़ नहीं गये और उस गरीबी के मुंह में नहीं गिर गये जहां से आज भी जी रहे हैं।'<sup>8</sup>

परन्तु आज आदिवासी शिक्षित हो रहे हैं, जिससे उनकी अज्ञानता दूर हो रही है, और वे अपने अस्तित्व एवं अस्मिता की रक्षा करने के लिए सजग हो रहे हैं। आदिवासी साहित्य में लेखक आदिवासी समुदाय की व्यथा—कथा नहीं कहते बल्कि इनमें निहित आत्मभिमान, अस्तित्वबोध एवं अस्मिता और विद्रोही चेतना को भी अभिव्यक्ति का केन्द्र बनाते हैं। आदिवासी साहित्य में आदिवासी जीवन के तनावों, यातनाओं और इन सबके बीच अपने को जिन्दा रखने की परिस्थितियों से जूझते हुए निरन्तर संघर्ष की शक्ति को रेखांकित किया गया है। ध्यान देने योग्य है कि आज आदिवासी समाज का मूल संघर्ष अब जल जंगल और जमीन तक ही सीमित नहीं बल्कि अपने शोषण से मुक्ति के लिए भी सक्रिय है।

हरिराम मीणा कविता के माध्यम से आदिवासी में आये सजगता को लिखते हैं—

"..... बस्तरिया आदिवासी भी अब"  
जानने लगे हैं  
चुप्पी का दर्द  
विद्रोह का सुख  
वे समझने लगे हैं  
अनपढ़ असंगठित रहने की पीड़ा"<sup>9</sup>

आदिवासी स्वभाव से बहुत भोले होते हैं। सब तरह से मैल वंचित! वे नहीं समझ पाते उन चालाकियों को जो उनके विरुद्ध पनपती रही हैं। निर्मला पुतुल लिखती हैं—

"..... इन खतरनाक शहरी जानवरों को पहचानो चुड़का सोरेन तुम्हारे भोलेपन की ओट में

इस पेचदार दुनिया में रहते  
तुम इतने सीधे क्यों हो चुड़का सोरेन?

.....

“ये वो लोग है जो हमारे बिस्तर पर करते हैं  
हमारी बस्ती का बलात्कार  
और हमारी ही जमीन पर खड़ा हो पूछते  
हमसे हमारी औकात”<sup>10</sup>

अतः आदिवासियों की मूल समस्या उनके अस्तित्व व अस्मिता को बचाये रखने की है! जिसे बचाने का कार्य आदिवासी साहित्य एवं साहित्यकार कर रहे हैं। आदिवासी जन व्यापक लोक का अभिन्न अंग है। आदिवासी साहित्य के द्वारा आदिवासी अतीत की कुछ झलकियाँ, उनकी वर्तमान दशा और भविष्य के बारे में उनकी सोच और संवेदना काफी हद तक अन्य जन तक संप्रेषित हो रही है।

अतः वैश्वीकरण के इस युग में आदिवासियों की जो सबसे बड़ी समस्या है वो है— अपने आपको बचाना, अपनी संस्कृति को बचाना, क्यों कि अगर विकास हो रहा है तो विकास के नाम पर उनकी संस्कृति को नोचा जा रहा है। उनकी सभ्यताओं का पतन हो रहा है। इसी पतन को रोकने के लिए आदिवासियों एवं गैर-आदिवासियों को मिलकर प्रयास करने की आवश्यकता है।

आज समय के साथ आदिवासी अपने अधिकारों, दायित्वों एवं कर्तव्यों के प्रति सजग हो गये हैं और समाज में एक नया सवेरा हो रहा है, जिसकी रोशनी में हर आदिवासी को उजाले में देखा जा रहा है।

आदिवासी समाज जो हाशिये पर पहुँच गया है, उसे मुख्य धारा में लाने का दायित्व हम सभी का है, तभी आदिवासी भाषा, साहित्य और संस्कृति का विकास हो सकेगा। और उन्हें सही पहचान मिल सकेगी।

अतः आदिवासी साहित्य समाज में अपना स्थान बना रहा है, सभी विमर्शों में आज आदिवासी विमर्श का प्रमुख स्थान है। साहित्य एवं लेखन के माध्यम से आदिवासी अस्तित्व एवं अस्मिता को सुरक्षित रखा जा सकता है।

‘देखा कलम की धार’  
तुम्हारे लिए,  
हां तुम्हारे लिए,  
कलम मौसम बदलेगी,  
कलम मौसम बदलेगी।”

### सन्दर्भ सूची

1. श्यामाचरण दुबे— परम्परा इतिहास बोध और संस्कृति — पृ0 सं0 — 62
2. गंगा सहाय मीणा— आदिवासी साहित्य विमर्श — पृ0 सं0 — 37
3. हरिराम मीणा— आदिवासी दुनिया — पृ0 सं0 — 203
4. हरिराम मीणा— आदिवासी दुनिया — पृ0 सं0 — 203
5. रमणिका गुप्ता — पृ0 सं0 — 127
6. गंगा सहाय मीणा — पृ0 सं0 — 35
7. रमणिका गुप्ता — पृ0 सं0 — 102
8. डा0 एम0 फिरोज अहमद — पृ0 सं0 — 182
9. हरिराम मीणा — पृ0 सं0 — 202
10. हरिराम मीणा— पृ0 सं0 — 202
11. हरिराम मीणा— पृ0 सं0 — 204